लोकतंत्र और स्कूली शिक्षा

प्रो. योगेन्द्र यादव

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा : 2005 ने शैक्षिक सुधारों के लिए नई जमीन मुहैया कराई है। इस पाठ्यचर्या के अनुरूप सभी विषयों के पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों की पुनः रचना की गई है।
प्रो. योगेन्द्र यादव ने राजनीति विज्ञान के नाम पर अभी तक चल रही पाठ्यपुस्तकों की समस्याओं को उजागर करते हुए नवनिर्मित पाठ्यपुस्तकों के अनुभवों को इस व्याख्यान का विषय बनाया है। योगेन्द्र यादव कक्षा 6 से 12 तक की राजनीति विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों की रचना में मुख्य सलाहकार रहे हैं।
यह व्याख्यान शिक्षा विमर्श की व्याख्यान शृंखला में दिया गया है।

लेखक परिचय :

जाने-माने राजनीतिक टिप्पणीकार और चुनाव विश्लेषक, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखाः 2005 के अनुरूप निर्मित राजनीति विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों की निर्माण समिति के मुख्य सलाहकार, संप्रति : विकासशील समाज अध्ययन पीठ, नई दिल्ली में सीनियर फैलो एवं मासिक पत्रिका 'सामयिक वार्ता' के कार्यकारी संपादक।

सम्पर्क :

विकासशील समाज अध्ययन पीठ, 29, राजपुर रोड, नई दिल्ली-110054

मेरे लिए बहुत खुशी और एक मायने में गर्व का विषय है कि मुझे आज यहां बोलने का मौका मिल रहा है। राजस्थान विश्वविद्यालय से मेरा अपना रिश्ता बहुत पुराना है। मुझे बी. ए. की डिग्री इसी विश्वविद्यालय से मिली है। मेरे लिए खास खुशी का अवसर यह भी है कि मेरे गुरु रहे आदरणीय प्रो. एस. सी. मिश्रा आज यहां मौजूद हैं।

मेरे व्याख्यान का विषय अपने आप में बहुत गहरा और व्यापक है लेकिन मैं बहुत सीमित और सामान्य बातें कहने जा रहा हूं। लोकतंत्र और स्कूली शिक्षा का संबंध दो अलग-अलग दिशाओं में देखा जा सकता है। आप यह प्रश्न उठा सकते हैं कि लोकतंत्र का स्कूली शिक्षा पर क्या प्रभाव पड़ रहा है ? यानी कि लोकतंत्र सभी के लिए शिक्षा को बेहतर सुलभ करवाता है या नहीं ? स्कूलों को बेहतर बनाता है या नहीं ? स्कूली शिक्षा के स्वभाव में या स्कूल में, जो कुछ पढ़ाया जा रहा है उसमें, कुछ गुणात्मक परिवर्तन लाता है या नहीं ? मैं आज यह प्रश्न नहीं पूछने जा रहा। यह शोध का विषय है और पिछले कुछ समय से इस विषय पर हमारे देश में कुछ चिन्ता शुरू हुई है। हम अपनी पीठ बहुत ठोकते रहते हैं कि यह लोकतंत्र दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है। बड़ा इसलिए है कि हमारी जनसंख्या ज्यादा है, इसमें और कोई बड़ी बात नहीं है। हमारे देश में दुनिया से सब कुछ ज्यादा है। चोर भी हमारे यहां पर ज्यादा होंगे। संत भी हमारे यहां सबसे ज्यादा होंगे। सब कुछ यहां ज्यादा होगा क्योंकि हमारी जनसंख्या ज्यादा है। इसी तरह से हमारा लोकतंत्र भी सबसे बड़ा है। लेकिन हम यह नहीं सोचते हैं कि लोकतंत्र से हमारे लिए क्या हुआ ? हमें क्या मिला ? किसे क्या मिला ? शिक्षा में क्या परिवर्तन आए ? अगर हमारे देश में लोकतंत्र न होता, पाकिस्तान की तरह तानाशाही होती तो क्या हमारी स्कूली शिक्षा बहुत अलग होती ? लेकिन मैं ये सवाल भी आज नहीं पूछने वाला। यह एक अलग सवाल है। यह भी गंभीर और शोध का विषय है। मैं दूसरा सवाल और वह भी सीमित अर्थ में पूछना चाहता हूं कि शिक्षा का लोकतंत्र पर क्या असर पड़ता है ? खासतौर से जिस तरह की औपचारिक शिक्षा हम स्कूलों में देते हैं, उसका लोकतंत्र पर क्या असर पड़ता है ? इरादा साफ है। मैं यह जानना चाहता हूं कि

क्या शिक्षा लोकतंत्र और लोकतांत्रिक मूल्यों की वाहक बन सकती है ? शिक्षा केवल इम्तिहान पास नहीं करवाए बल्कि लोकतांत्रिक व्यवस्था को, जिसे हम बड़ा खूबसूरत मानते हैं; गहरा करने में लोकतंत्र साधक, उसका एक वाहक और उसमें मददगार हो सकती है ? यह एक सवाल है और इसे मैं दार्शनिक स्तर पर नहीं उठाना चाहता। दार्शनिक स्तर पर रूसो वगैरह ने इस पर गौर किया था और इसके बारे में उसके कोई बहुत अच्छे निष्कर्ष नहीं थे।

मैं बहुत सीमित अर्थ में यह पूछना चाहता हूं कि हमारे यहां हर स्कूल में सामाजिक विज्ञान या राजनीतिक विज्ञान नामक जो विषय पढ़ाया जाता है उसका हमारे लोकतंत्र से क्या रिश्ता है ? क्या वह लोकतंत्र को मजबूत बनाता है या कमजोर करता है ? क्या उसमें कुछ बेहतर किया जा सकता है ? यह सब कहने के पीछे मेरे मन में कोई गहरा शोध और अनुभव नहीं है। मैंने पहले ही विश्वंभरजी से कहा था कि आप शिक्षा विमर्श में मुझे घसीट रहे हैं। मेरा शिक्षा में कोई ऐसा अनुभव नहीं है, मैं कोई शिक्षाविद् नहीं हूं। जिस तरह से इस देश का हर आई.ए.एस. अधिकारी यह समझता है कि इस देश को चलाने का विशेष गहरा दर्शन उसे पता है, उसी तरह से इस देश का हर अध्यापक भी यह समझने लग जाए कि वह शिक्षाविद् है, तो यह अच्छी बात नहीं होगी। मेरा सिर्फ एक छोटा-सा अनुभव पिछले दो साल का है। यह अनुभव भी खासतौर से राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी) की किताबें लिखने का है। एनसीईआरटी ने हमें कक्षा 6 से 12 तक की राजनीति विज्ञान की किताबें नए सिरे से लिखने के लिए आमंत्रित किया। अब आप इस विषय को राजनीति विज्ञान कहना चाहें या नागरिक शास्त्र या राजनीतिक शास्त्र। आप इसका जो भी नाम देना चाहें, सभी किताबों को बदलना था और नए सिरे से लिखना था। हमें उसका न्यौता मिला और हमने पिछले दो साल में इन्हें बनाने का प्रयास किया। उसके जो अनुभव हैं, मैं उसी के बारे में आपसे बात करना चाहता हूं।

सवाल यह है कि शिक्षा का लोकतंत्र से क्या रिश्ता है ? शिक्षा लोकतंत्र में क्या योगदान देती है या दे सकती है ? यदि आप यह सवाल पूछें कि शिक्षा लोकतंत्र में क्या योगदान देती है तो इसका उत्तर लगभग साफ और सपाट है - कुछ नहीं देती। योगदान के बजाए शायद समस्या ज्यादा खड़ी करती है। मैं आपको एक छोटी-सी मिसाल देता हूं। मैं हरियाणा का रहने वाला हूं। आप दिल्ली की नाक के नीचे गुडगांव से 15 किलोमीटर अन्दर चले जाइए। गुडगांव जिसे दिल्ली में हम टेक्नॉलॉजी और 21वीं सदी इत्यादि जैसे मुहावरों का बहुत बड़ा केन्द्र मानते हैं। जहां आई. टी. हब्स और सब कुछ आ रहा है। आपको एक इलाका मिलेगा जिसका नाम है मेवात। जिन इलाकों में देश की सबसे कम साक्षरता है उनमें से एक मेवात भी है। कम से कम मुस्लिम समाज में सबसे कम साक्षरता दिल्ली की नाक के नीचे इसी इलाके में है। एनसीईआरटी की किताबें लिखने से पहले मैं घूमता-फिरता वहां चला गया और एक स्कूल में जाकर बैठ गया। यह सरकारी स्कूल था और मैंने मास्टर जी से पूछा, ''क्या मैं कक्षा 9 और 11 में से किसी में नागरिक शास्त्र के पीरियड में बैठ सकता हूं ?'' उन्होंने कहा, ''बैठें क्यों, आप पढ़ा दीजिए न।'' मास्टर जी के लिए तो अच्छा ही था कि कोई बाहर से आया है और बच्चों को पढ़ाने के लिए तैयार है। मुझे पता चला कि दो महीने से स्कूल में नागरिक शास्त्र के मास्टर जी छुट्टी पर थे। एक कक्षा में संस्कृत के और दूसरी कक्षा में कॉमर्स के मास्टर जी नागरिक शास्त्र पढ़ा रहे थे। जाहिर है कि उन्हें कोई अफसोस या दुख नहीं हुआ कि यह व्यक्ति दो-एक घंटा आकर बैठना चाहता है।

मैं कक्षा में बैठा और बच्चों से दो-एक घंटा बातें कीं। ये बच्चे समाज के सबसे गरीब तबके के नहीं थे। कम से कम मुझे उनमें से कुछ लड़कियों को देखकर लगा कि वे खाते-पीते किसान परिवारों से हैं। गांव में यह कायदा है कि लड़के को शहर के किसी स्कूल में भेजा जाता है और लड़कियों को गांव के ही स्कूल में भेजा जाता है। जिनके साथ मैंने बातचीत की वे कक्षा 11 के बच्चे थे और उन्होंने राजनीति शास्त्र को एक ऐच्छिक विषय के रूप में लिया था। उस वक्त कक्षा में जो चल रहा था उसी से जोड़कर मैंने चर्चा शुरू की। ज्यादातर बच्चों को पता था कि राष्ट्रपति कौन है। क्विज की तरह सबको राष्ट्रपति का नाम पता था। मैंने पूछा, ''लोकतंत्र शब्द सुना है ? क्या हमारे देश में लोकतंत्र है ?'' एक बहुत ही होशियार-सी लड़की ने कहा, ''हां, हां! एक तो लोकतंत्र है और एक राजतंत्र है।'' मैंने कहा, ''क्या ये दोनों एक साथ हमारे देश में हैं ?'' उसने कहा, ''हां, लोकतंत्र का 5 साल के लिए और राजतंत्र का 6 साल के लिए चुनाव होता है।'' मुझे समझ में आ गया कि वह लोकसभा और राज्यसभा की बात कर रही है। शब्दों में थोड़ा हेर-फेर हो गया है। मैंने पूछा, ''देश में किसका राज होता है ? प्रधानमंत्री कौन होता है ?'' प्रधानमंत्री का नाम सब बच्चों को पता था। राष्ट्रपति के बारे में बच्चों के बहुत अच्छे ख्यालात थे कि वे बहुत अच्छे आदमी हैं, जैसे कि हमारे पिछले राष्ट्रपति के बारे में ज्यादातर बच्चों के ख्यालात थे। मैंने कहा, ''हां, वे आदमी तो बहुत बढ़िया हैं, लेकिन देश कौन चलाता है ?'' उन्होंने कहा, ''राष्ट्रपति चलाता है।'' मैंने कहा, ''चलाता तो है। मान लीजिए राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री में थोड़ा-सा मतभेद हो जाए तो क्या होगा ?'' उन्होंने कहा, ''मतभेद होने ही नहीं चाहिएं, दोनों आपस में बैठकर सुलझा लें।'' मैंने कहा, ''यह तो बहुत अच्छी बात है। मान लीजिए कि मामला नहीं सुलझे तो ? राष्ट्रपति का मानना है कि देश में फलां चीज होनी चाहिए

और प्रधानमंत्री कहते हैं कि नहीं दूसरी चीज होनी चाहिए, तो क्या होगा ?'' बच्चों में इस विषय पर काफी राय हुई। मैंने भी कहा कि आपस में खूब राय कर लीजिए इम्तिहान नहीं है इसलिए सोच समझ कर जवाब दें। सबने काफी राय करके कहा, ''अगर ऐसा कुछ हो जाए तो जाहिर है राष्ट्रपति की बात चलेगी क्योंकि राष्ट्रपति इस देश में प्रमुख हैं।'' मैंने कहा, ''प्रधानमंत्री की राय का क्या होगा ?'' बच्चों ने कहा, ''नहीं, उन्हें राष्ट्रपति की बात माननी पड़ेगी क्योंकि राष्ट्रपति प्रधानमंत्री को नियुक्त करते हैं। जाहिर है राष्ट्रपति की बात चलेगी।'' लोकसभा और राज्यसभा के बारे में मैंने पहले पूछा था कि, ''लोकसभा और राज्यसभा में से ज्यादा शक्ति किसके पास होती है ?'' फिर काफी चर्चा हुई। उन सब की राय थी कि, ''जाहिर है वरिष्ठ सदन राज्य सभा होती है तो वरिष्ठ सदन के पास ज्यादा शक्ति होती है।'' कक्षा में बातचीत के दौरान ये सब चलता रहा। मुझे थोड़ी-सी खीज हुई, खीज उनसे नहीं थी। बाद में मैंने उनकी किताब को पलटकर देखा। उस किताब के अन्दर राष्ट्रपति की शक्तियों के बारे में 14 पेज थे और प्रधानमंत्री के बारे में दो पैराग्राफ। अगर बच्चे इससे यह निष्कर्ष निकालें कि इस देश में राष्ट्रपति शासन करता है तो इसमें गलत क्या है ! पता नहीं आप में से कितने लोगों को कभी भी राजनीति शास्त्र पढ़ना पड़ा है। वे जानते होंगे कि राष्ट्रपति की शक्तियों के बारे में बहुत विस्तार से बताया जाता है। पाठ्यपुस्तकों में उसकी विधायिका, कार्यपालिका, न्यायिक और प्रशासनिक शक्तियों के बारे में बताया जाता है। उसकी आपातकाल की भी शक्तियां होती हैं। उसकी शक्तियों के बारे में बकायदा 14 पेज पढ़ाया करते हैं और अंत में एक छोटा-सा जिक्र कर देंगे कि राष्ट्रपति एक अदने से कर्मचारी को नियुक्त कर देता है जिसका नाम प्रधानमंत्री होता है। यदि उनकी पाठ्यपुस्तकें ये बता रही थीं और यदि यह पढ़कर बच्चे इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं तो इसमें बच्चों का क्या दोष है ! पाठ्यपुस्तक बकायदा कह रही थी कि एक वरिष्ठ सदन होता है और एक निम्न सदन होता है इत्यादि। पाठ्यपुस्तक यह भी कह रही थी कि राज्यसभा में 35 साल से ऊपर के बहुत उम्दा लोग आते हैं और सब मान लेते हैं कि 35 साल से ऊपर के लोग बहुत संजीदा हुआ करते हैं। बहरहाल, पाठ्यपुस्तक में यह सब लिखा हुआ था।

उनसे करीब एकाध घण्टे माथापच्ची करने के बाद मैंने पूछा, ''इस कक्षा में बिजली क्यों नहीं है ?'' उन्होंने कहा, ''दरअसल पिछले तीन हफ्ते से स्कूल और पूरे गांव में बिजली नहीं है। पूरे गांव की बिजली इसलिए कटी हुई है क्योंकि गांव में पंचायत के चुनाव हुए थे और गांव के पंचायत के चुनाव में जो मुखिया जीता दरअसल वह हरिजन जाति का है। (हरिजन शब्द हमारे यहां इस्तेमाल किया जाता है।) गांव की प्रभावशाली जाति के लोगों को यह मंजूर नहीं है कि हरिजन जाति का व्यक्ति गांव का मुखिया बने। हालांकि यह सीट आरक्षित नहीं थी। उसको एक सबक सिखाने के लिए उन्होंने खण्ड विकास अधिकारी से मिलकर यह एक ऐसा खेल खेला है कि गांव के अन्दर 15 दिन तक बिजली नहीं आएगी तो लोग अपने आप त्राहि-त्राहि करेंगे और उनको पता चलेगा कि ऐसा सरपंच चुनोगे तो तुमको यही मिलेगा।'' उन्हीं बच्चों ने, जो मुझे भारत की राजनीतिक व्यवस्था के न्यूनतम बिन्दु तक नहीं बता पा रहे थे, जो कक्षा 8 के बच्चे को पता होने चाहिएं; वे ही बच्चे मुझे अगले एक घंटे तक वर्ग और राजनीति (क्लास एण्ड पॉलिटिक्स) पर एक शोध के स्तर की चीजें समझा रहे थे। ये बच्चे मूर्ख नहीं थे, बहुत तेज बच्चे थे। जब वे अपनी पाठ्यपुस्तक से समझ कर बता रहे थे तब वे वैसी चीजें बता रहे थे। उसके बाद एक घंटे उन्होंने मुझे गांव की राजनीति की जो बारीकियां समझाईं वह देखकर मैं दंग रह गया कि 11 वीं कक्षा के बच्चों को राजनीति के बारे में इतना पता है। समस्या उनमें नहीं थी, समस्या उनकी बुद्धि में नहीं थी। समस्या हमारी पाठ्यचर्या, हमारे पाठ्यक्रम और हमारी पाठ्यपुस्तकों की थी। बच्चा अपने सामान्य जीवन में राजनीति के बारे में जो कुछ सीखता है, उसे हम स्कूल के राजनीति शास्त्र में जगह देने को तैयार नहीं हैं। हम कहते हैं राजनीति शास्त्र का मतलब है राष्ट्रपति इस देश में कैसे चुना जाता है ? आप उस प्रक्रिया का वर्णन कीजिए। इस सवाल का जवाब किसी भी विश्वविद्यालय के राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर से पूछ लीजिए, वे भी शायद ठीक से नहीं बता पाएंगे। यदि यही सवाल इस देश की संसद के 543 सदस्यों से पूछा जाए कि राष्ट्रपति का चुनाव कैसे होता है ? आधे से ज्यादा लोग यह नहीं बता पाएंगे। लेकिन यह आप कक्षा 8 के बच्चे को बताना चाहते हैं जिसका कोई अर्थ हमारे देश की राजनीतिक प्रणाली को बदलने या बनाने में नहीं है। इस तरह की बेतुकी चीजें हम कक्षा 8 के बच्चों को पढ़ाते हैं।

राजनीति शास्त्र को लेकर जो समस्या है उसके हम तीन हिस्से कर सकते हैं जिसके चलते हमारे यहां फांक पैदा हो गई है। एक, राजनीति के सिद्धान्त और व्यवहार में फांक। जो बच्चे राज्यसभा और राष्ट्रपति के बारे में बता रहे थे वे ठीक बता रहे थे, क्योंकि उन्हें राजनीति का कोरा सिद्धान्त, वह भी औपचारिक राजनीति का, ही बताया गया था। उसकी व्यवहारिकता बताई ही नहीं गई। यह राजनीति के सिद्धान्त और व्यवहार की फांक है। राजनीति विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों में बच्चा पाठ पढ़कर यह नहीं समझ सकता कि वास्तव में राजनीति के नाम पर हो क्या रहा है। मनमोहन सिंह इस देश को कैसे चला रहा है जबकि राज तो प्रतिभा पाटिल को चलाना चाहिए। क्योंकि दरअसल उसकी पाठ्यपुस्तक उसको

यह बताती ही नहीं है कि प्रधानमंत्री ही देश को चलाता है। कहीं एक शब्द बता दिया जाता है कि राष्ट्रपति एक प्रतीकात्मक मुखिया है। और क्योंकि यह एक वाक्य भर है और एक वाक्य की उतनी ही महिमा होती है जितनी कि एक वाक्य की होनी चाहिए और उस वाक्य को कोई याद नहीं रखता। दूसरा, जो मैंने इस उदाहरण में बताया कि बच्चे के जीवन्त अनुभव और स्कूल की औपचारिक शिक्षा में फांक है। ये दोनों अलग-अलग दायरे हैं जिनका एक-दूसरे से कोई संबंध नहीं है। तीसरा, लोकतंत्र और राजनीति के बीच में फांक है।

राजनीति शास्त्र विषय, इसे पहले शुरूआती कक्षाओं में राजनीति शास्त्र नहीं कहा जाता था, इसे ग्यारहवीं-बारहवीं कक्षा में यह नाम दिया जाता था। पहले हम इस नाम से भी बचते थे और इसे हम नागरिक शास्त्र कहते थे। राजनीति विज्ञान नामक विषय से जिन लोगों का वास्ता पड़ता है वे किसी एक चीज के बारे में सबसे शर्मिंदा और लज्जित रहते हैं तो वह है -राजनीति शास्त्र! वे कहीं न कहीं अपने विषय के बारे में लज्जित रहते हैं। राजनीति शास्त्र को लेकर ऐसे भाव होते हैं कि क्या करूं मैं ? देखिए तो, शहर के नालों के मुआयने की ड्यूटी लग गई है मेरी ! यह एक केन्द्रीय भाव है जो हर राजनीति शास्त्र की पुस्तक में था। नागरिक शास्त्र या बाद में राजनीति शास्त्र के नाम की कक्षा 6 से कक्षा 12 तक की जितनी भी पुस्तकें थीं उसके बारे में एक बात आप निश्चय के साथ कह सकते थे कि कोई एक चीज जिसे नहीं पढ़ाया जाता था, जिसको दूर से भी छुआ नहीं जाता था वह थी राजनीति। राजनीति शास्त्र की कहलाने वाली किताबें राजनीति को छूती भी नहीं थीं।

आपने पिछले 20 सालों में एनसीईआरटी की किताबों के बारे में तमाम बहस सुनी होंगी। तमाम हल्ला गुल्ला! भगवाकरण ! ये फलां पार्टी का ! कभी आपने राजनीति शास्त्र की किताब पर कोई विवाद सुना ? मैंने कतई नहीं सुना। उसका कारण यह था कि उसमें राजनीति पढ़ाई ही नहीं जाती थी। उसमें कोई विवादास्पद बात थी ही नहीं। अगर राष्ट्रपति का चुनाव बताएंगे तो उसमें विवाद की गुंजाइश है ही कहां ? आप कहिए कि राष्ट्रपति का चुनाव 'एकल संक्रमणीय आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली' से होता है। जिस तरह का इस पद्धति का नाम है उसे सुनकर ही बच्चे थक जाते हैं। दुनिया में केवल इसी देश में राष्ट्रपति के चुनाव की यह पद्धति होती है। पता नहीं ऐसी विचित्र प्रणाली इस देश में क्यों अपनाई गई ! राष्ट्रपति के चुनाव की पद्धति को हम ऐसे पढ़ा रहे हैं जैसे वही इस देश की राजनीति का केन्द्रीय हिस्सा हो और उसी के इर्द-गिर्द पूरा देश घूमता हो। इसी की वजह से सामान्य जनमानस में लोकतंत्र और राजनीति के बीच एक खाई बनी हुई है।

एक खेल मुझे बहुत प्रिय है। एक छोटा-सा खेल आप हमेशा खेल सकते हैं। मैं स्कूलों में जाकर हमेशा खेलता हूं। यह खेल बहुत ही साधारण है। वह यह कि पहले मैं सब लोगों से जाकर पूछता हूं कि लोकतंत्र अच्छी चीज है या बुरी ? सब हाथ खड़ा कर देते हैं कि लोकतंत्र अच्छी चीज है। दूसरा सवाल होता है कि राजनीति अच्छी चीज है या बुरी ? सब कह देते हैं बुरी। कोई एकाध बेचारा हाथ खड़ा करता है तो वह भी इधर-उधर देखकर अपना हाथ नीचे कर लेता है। फिर मैं तीसरा सवाल पूछता हूं कि क्या लोकतंत्र राजनीति के बिना चल सकता है ?

राजनीति लोकतंत्र के बिना चल सकती है और बड़े आराम से चलती है। सऊदी अरब में भी चलती है। पाकिस्तान में भी चल रही है। दुनिया में सब जगह राजनीति हो रही है। लेकिन क्या लोकतंत्र कहीं भी बिना राजनीति के चल सकता है ? क्या कोई ऐसी जगह है जहां राजनीति के नाम पर कोई धरना, कोई प्रदर्शन, कोई विरोध, कोई आलोचना, कोई पार्टी, कोई संगठन आदि न हो और उस देश में लोकतंत्र सुचारू रूप से चल रहा हो ? फिर लोग सोचते हैं कि नहीं चल सकता। फिर मैं कहता हूं कि आप इन तीनों वाक्यों को जोड़कर देख लीजिए। आप कह रहे हैं लोकतंत्र अच्छा है। आप कह रहे हैं कि राजनीति बुरी है। और आप कह रहे हैं कि बिना राजनीति के लोकतंत्र चल नहीं सकता। आप कह क्या रहे हैं?

पूरी स्कूली शिक्षा हमें इस दोहरी मानसिकता के लिए तैयार करती है। क्योंकि लोकतंत्र और राजनीति में एक खाई है। लोकतंत्र बहुत खूबसूरत गऊमाता है और राजनीति गंद है। इन दोनों में से, राजनीति मात्र अपने आप में इतनी घटिया चीज है कि उसमें किसी भले व्यक्ति को नहीं जाना चाहिए। लोकतंत्र एक ऐसी खूबसूरत चीज है जिस पर दुनियाभर में हम गर्व करेंगे। जिसको फलता-फूलता हम देखना चाहेंगे। ऐसी स्थिति में राजनीति में कोई भला आदमी गलती से कहीं चला न जाए ! ये मानसिकता कहां से पैदा हुई ? यह मानसिकता उस तीसरी खाई से पैदा होती है जिसका मैंने जिक्र किया कि हमारे यहां लोकतंत्र और राजनीति के बीच फांक है। कुल मिलाकर आप कहें तो लोकतंत्र और राजनीति में एक ऐसी खाई है जिसको पाटने की कोई कोशिश नहीं है।

मुझे नहीं पता इस कमरे में राजनीति शास्त्र पढ़ने वाले कितने लोग हैं। यदि किसी ने राजनीति विज्ञान नहीं पढ़ा तो कोई नुकसान नहीं हुआ। आप ऐसा मत सोचिए की कोई अच्छी चीज थी जिससे आप वंचित हो गए। मुझे सामान्यतः लगता है कि जिसने पॉलिटिकल साइंस (राजनीति विज्ञान) नहीं पढ़ा, उसका पॉलिटिकल सेंस (राजनैतिक बोध) ठीक-ठाक रहता है और जो पॉलिटिकल साइंस पढ़ लेता है उसका पॉलिटिकल सेंस गायब हो जाता है।

दरअसल समस्या राजनीति शास्त्र पढ़ाने में भगवाकरण इत्यादि की नहीं है और न ही कभी थी। एनसीईआरटी की राजनीति विज्ञान की जो पाठ्यपुस्तकें चला करती थीं उनमें कम से कम ये दिक्कतें कतई नहीं थीं कि भारतीय जनता पार्टी ने उनको अपने पक्ष में कर लिया या कांग्रेस ने अपने पक्ष में कर लिया। असली दिक्कत यह थी कि उसमें राजनीति नामक चीज गायब थी। उसमें लोकतंत्र पर गंभीर और गहन चर्चा थी ही नहीं। लोकतंत्र एक खूबसूरत चीज है जो की ऊपरी मंजिल या स्वर्ग में होती है। उस पर चर्चा करते हुए दुनियावी घटिया चीजों की कोई चर्चा नहीं होती। इसके चलते मेरा यह निष्कर्ष और समझ थी कि हमारी औपचारिक स्कूली शिक्षा लोकतंत्र में सहयोगी होने की बजाए बाधक है। यह शिक्षा लोगों में लोकतंत्र विरोधी मानसिकता तैयार करती है। लोकतंत्र का विरोध कभी भी लोकतंत्र विरोध के नाम पर नहीं होता। हमेशा दुनिया में बदसूरत चीज के लिए खूबसूरत शब्द होता है। लोकतंत्र विरोध हमेशा राजनीति विरोध के नाम पर होता है। कोई यह थोड़े ही कहता है कि लोकतंत्र बुरी चीज है। लोग कहते हैं कि राजनीति गंदी चीज होती है। ये सब लोकतंत्र को खत्म करने के तरीके हैं। लोकतंत्र को खत्म करने के लिए आप कहते हैं कि चुनावों में सुधार होना चाहिए, कि केवल पढ़े-लिखे लोग चुनाव लड़ सकें। ये लोकतंत्र को खत्म करने के खूबसूरत तरीके होते हैं। हमारी पाठ्यपुस्तकें और राजनीति शास्त्र भी इसी तरह का मानस तैयार करते हैं।

औपनिवेशिक समय में नागरिक शास्त्र या राजनीति शास्त्र केवल एक औपनिवेशिक गुलाम तैयार करने का शास्त्र था। वह गुलाम तैयार नहीं पाया, क्योंकि बहुत लोग पढ़ते-बढ़ते नहीं थे। दूसरे क्योंकि उस जमाने में राष्ट्रीय आन्दोलन चल रहा था। लोगों को वास्तव में राजनीति के बारे में शिक्षा राष्ट्रीय आन्दोलन से मिली, किताबों से नहीं मिली, नागरिक शास्त्र की किताबें चाहे कुछ भी कहती रही हों। मैं समझता हूं आज भी गनीमत यही है कि लोग राजनीति शास्त्र की किताबों से राजनीति नहीं सीखते। अगर सीखते होते तो देश का बंटाधार हो जाता। गनीमत है कि लोग राजनीति शास्त्र और स्कूलों की पाठ्यपुस्तकों को गंभीरता से नहीं लेते। जैसा कि रोहित जी ने कहा, 'हम अपनी समझ को डिब्बों में बांटकर रखते हैं।' राजनीति शास्त्र की किताब पढ़ी, इम्तिहान पास किया और उसके बाद गांव गए; वहां राजनीति का खेल देखा और उसके बारे में अपनी अलग से राय बनाई। और इस तरह जो राय बनती है वह बहुत गहन रूप से लोकतांत्रिक राय होती है। बच्चे कक्षा में लोकतंत्र विरोधी विचार व्यक्त कर रहे थे। गांव की राजनीति के बारे में उनके इतने गहरे विचार थे कि क्या होना चाहिए ? औरतें गांव में क्या कर सकती हैं ? इनके बारे में उनके बहुत बढ़िया विचार थे। मेरी अपनी मान्यता है कि जिस तरह औपनिवेशिक भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन ने हमें बचाए रखा और नागरिक शास्त्र की किताबों से बहुत फर्क नहीं पड़ा, उसी तरह औपनिवेशिक काल के बाद के समय में भी हम राजनीति शास्त्र की किताबों के बावजूद लोकतंत्र बने रहे। ऐसे में हम क्या करें ?

मैंने दो साल काम करके कान पकड़ लिए कि बस, अब और करने की हिम्मत नहीं है। इसलिए कि यह बहुत लम्बा काम है। कम से कम जो लोग 40-50 साल काम करना चाहते हैं, यह क्षेत्र उन लोगों के लिए है। जो लोग दो साल में कुछ करना चाहते हैं शिक्षा उनका क्षेत्र नहीं है।

आप लोगों को पता होगा कि देश में एनसीईआरटी केन्द्रीय स्तर पर किताबें लिखती है। जिनका किसी कारणवश केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड उपयोग करता है। हालांकि उन्हें ऐसा करने की कोई जरूरत नहीं है। एनसीईआरटी का काम देश में आधुनिक आदर्श पाठ्यपुस्तक बनाकर दिखाना, उसका नमूना पेश करना है। जिस नमूने का इस्तेमाल करके देश में पाठ्यपुस्तक बन सकें। लेकिन वास्तव में एनसीईआरटी केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (सीबीएसई) के बच्चों के लिए किताबें लिखती है। बाकी बोर्ड अपनी-अपनी किताबें बनाते हैं और अपने तरीके से चलाते हैं।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा : 2005 के अनुरूप सभी विषयों की किताबें नए सिरे से लिखी गईं। केवल राजनीति विज्ञान ही नहीं, गणित, अर्थशास्त्र, भाषा आदि सभी विषयों की किताबें कक्षा 1 से 12 तक लिखी गईं। उसमें हमें भी अवसर मिला कि हम राजनीति शास्त्र की किताबों पर दोबारा गौर कर सकें, और लिख सकें। यह एक मायने में अनूठा अवसर था। उसमें पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तक दोनों को नए तरीके से लिखने का अवसर मिला। अन्यथा जिस किस्म का पाठ्यक्रम इससे पहले का था उसमें नई पाठ्यपुस्तकें लिखने का कोई मतलब नहीं था क्योंकि वह पाठ्यक्रम ही इस प्रकार का था कि उसमें कोई नई चीज कहने की गुंजाइश ही नहीं थी। मुझे लगता है कि एक किस्म के बदलाव और तमाम किस्म के सहयोगों के चलते हमें यह अवसर मिला है। मुझे नहीं लगता कि इसकी पूरी तैयारी थी। दुनिया के दूसरे देशों में बड़ी-बड़ी संस्थाएं इस पर काम करती रहती हैं कि किस विषय में क्या पढ़ाया जाए। जैसे अमेरिका में आपको एक ही विषय पर काम करने वाली ऐसी 10-15 बड़ी-बड़ी संस्थाएं मिल जाएंगी जहां 50-100 लोग काम करते हैं। उन संस्थाओं का एक मात्र उद्देश्य है कि अमेरिका के स्कूलों के बच्चों को नागरिक शास्त्र की शिक्षा कैसे दी जाए ? ये संस्थाएं पिछले चालीस-पचास साल से काम कर रही हैं। हमारा दुर्भाग्य यह था कि हमारे देश में न तो ऐसी संस्था हैं, न ही ऐसे व्यक्ति हैं जिनके साथ यह काम किया जा सके। हमारे यहां राजनीति

विज्ञान का प्रोफेसर समझता है कि स्कूल की पाठ्यपुस्तक लिखना तो घटिया और छोटा काम है। ऐसा ही अन्य विषयों में भी माना जाता है। पाठ्यपुस्तक लिखना और वह भी स्कूल की ! ऐसी छोटी चीज में वे अपना हाथ तक लगाने को तैयार नहीं हैं। वैसे भी हमारे यहां राजनीति विज्ञान का प्रोफेसर अरस्तु से नीचे उतरने को सामान्यतः तैयार नहीं होता। कोई जो छत्तीसगढ़ में पढ़ा रहा है उससे पूछिए की बस्तर में क्या हो रहा है? सल्वा जुडुम क्या है और उसके तहत क्या हो रहा है? राजनीति विज्ञान के प्रोफसर से आप पूछिए कि आपके पड़ोस में क्या हो रहा है तो वह यह समझता है कि आप उससे इतनी छोटी, इतनी बौनी, इतनी तुच्छ बात कर रहे हैं। उससे आप सिर्फ 50 हजार लोगों के मरने की बात कर रहे हैं। आप उससे प्लेटो के बारे में बात कीजिए, आप उससे 1956 से 1961 तक के भारत-पाक संबंधों के बारे में बात कीजिए। वह आपको इसके बारे में ज्ञान देगा !

राजनीति शास्त्र विषय हमारे अपने संदर्भ से, जहां जिस संदर्भ में हम जीते हैं, कटा रहता है। आमतौर पर मेरा अनुभव यह रहा है कि सामान्यतः किसी इलाके के एक पत्रकार को वहां की राजनीति के बारे में ज्यादा पाता है बजाए एक राजनीति शास्त्र के प्रोफेसर के। अपने संदर्भ को समाहित करने के लिए हमारा अनुशासन तैयार नहीं है। हमारे देश में इसकी कोई तैयारी और कोई अनुभव नहीं है। इस चीज पर गौर करें कि इस देश के करोड़ों नागरिक, जो इस देश का भविष्य तय करेंगे वे कितने करोड़ों घंटे इस देश के तमाम स्कूलों में राजनीति या समाज या देश के बारे में सोचने में बिताते हैं ? जिसको हम समाज विज्ञान की कक्षा कहते हैं उस कक्षा में कितने बच्चे पढ़ते हैं और उसे घंटे से गुणा करें तो आप सोचिए कि एक वर्ष में कितने करोड़ों घंटे इस देश के भविष्य के बारे में चर्चा हुई ? और उन घंटों का हम कितना दुरूपयोग करते हैं ! इस देश का अगर नवनिर्माण करना है तो कितने करोडों घंटे आपके पास उपलब्ध हैं ! और उन करोड़ों घंटों में हम शायद एक छटांक बात भी नहीं करते।

यह सब बताने के बाद मैं आपसे यह जिक्र भी करना चाह रहा था कि जो अवसर हमें मिला इसका उपयोग हमने कैसे किया? और इससे क्या हुआ और क्या चुनौतियां हैं। चुनौतियां बहुत भारी और बड़ी हैं। जो कुछ हुआ है वह बहुत छोटा है। पहला काम जो हुआ वह एनसीईआरटी के पाठ्यक्रम में बदलाव है। एनसीईआरटी ने किसी तरह से सीबीएसई को तैयार कर लिया कि वह अपना पाठ्यक्रम बदल दे। और ये कैसे हो गया ! इस देश में कई बार बहुत बड़ी चीजें अनजाने में हो जाती हैं। मुझे लगा कि कुछ अनजाने में यह घटना भी हो गई कि सीबीएसई ने कुछ उनींदेपन में कह दिया कि हां, आप बदल लीजिए तो हम भी बदल लेंगे। इससे पहले कि सीबीएसई जागती पाठ्यक्रम बदल चुका था। कोई बहुत गहन चर्चा इस पर नहीं हुई। बाद में इतिहासकार लिखेंगे कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या को बदलने के लिए पूरे देश में एक प्रक्रिया चली। मैं जानता हूं कि इसके लिए 25-30 लोगों में चर्चा हुई जिनमें से रोहित जी यहां बैठे हुए हैं, और उसके चलते सब कुछ बदल दिया गया। लेकिन इससे एक बड़ा बदलाव आया, जो पहले पाठ्यचर्या में आया और बाद में पाठ्यक्रम में भी आया। पाठ्यक्रम में जो बदलाव आया, मैं खासकर राजनीति विज्ञान की बात करूंगा, वह यह कि कक्षा 6 से 8 तक हमने बच्चों को संस्थाओं के बारे में पढ़ाना बंद कर दिया। कक्षा 6 के बच्चों को यह नहीं बताया जाएगा कि मुख्यमंत्री कौन होता है ? प्रधानमंत्री कौन होता है ? राष्ट्रपति कौन होता है इत्यादि। उनको उनके स्थानीय परिवेश के बारे में, उसकी राजनीति के बारे में बताया गया। राजनैतिक संस्थाओं के बारे में बताने की बजाए आज समाज में जो कुछ हो रहा है उसके बारे में बताया गया है। जैसे बाजार, मीडिया और टेलीविजन के बारे में; जो कि गहरे तौर राजनैतिक चीजें हैं; लेकिन राजनैतिक संस्था के नाम से काम नहीं करतीं। इन चीजों से बच्चों का परिचय कराने की कोशिश की गई है। नागरिक शास्त्र की बजाए समाजिक और राजनैतिक जीवन से परिचित कराने की कोशिश की गई है। इन किताबों को ऐसा नाम दिया गया जिसमें कुछ राजनीति का, कुछ अर्थशास्त्र का और कुछ समाजशास्त्र का पुट हो। हमने इस तरह से अनुशासन की चारदीवारी को हटाने की कोशिश की है, जिसको पहले कक्षा 6 में बड़ी गंभीरता से लिया जाता था। हमने तय किया कि हमें इससे कोई मतलब नहीं है कि राजनीति विज्ञान क्या है, अर्थशास्त्र क्या है और समाजशास्त्र क्या है? हमें लगता है कि बच्चा अपने इर्द-गिर्द के परिवेश के बारे में जानना चाहता है और उसे जानने दिया जाए। इसी सोच के चलते पाठ्यक्रम बदला गया। इससे पहले कक्षा 9 से 10 में भारत के संविधान की बारीकियां पढ़ाई जाती थीं। उन सब को हटाकर लोकतंत्र के बहाने उनका परिचय राजनीति से करवाने की कोशिश की है। कक्षा 9 व 10 में लोकतांत्रिक राजनीति के नाम से केवल दो किताबें आई हैं। बच्चों को लोकतंत्र के सिद्धान्त और व्यवहार के बारे में बताया गया है और खासतौर से हमारे देश में कैसा व्यवहार होता है, इसका परिचय करवाया गया है।

कक्षा 11 और 12 में राजनीति शास्त्र की बुनियाद से परिचित करवाया गया है। क्योंकि इन कक्षाओं में बच्चे राजनीति विज्ञान को ऐच्छिक विषय के रूप में चुनते हैं, जो भी बच्चे जिस भी कारण से चुनते हैं। बाद में मुझे पता चला कि राजनीति विज्ञान को चुनने का कारण इसमें अच्छे नंबर आना है। इसके अलावा और कोई कारण नहीं है। दूसरा कारण, पता नहीं आपके इधर यह होता है या नहीं, मैं गंगानगर के जिस इलाके में पढ़ा हूं वहां हर चीज पंजाबी लहजे में होती थी। वहां अच्छे बच्चे सेंस (साइंस) पढ़ते थे और जो बेचारे

सेंस के काबिल नहीं होते थे वे नॉनसेंस पढ़ते थे। अतः राजनीति विज्ञान पढ़ने के लिए शुद्धतः नॉनसेंस लोग आते थे। और यह माना जाता था कि नॉनसेंस वाले लोगों को ज्यादा विशेष विकल्प देने की क्या जरूरत है ! ज्यादातर स्कूल बता देते हैं कि आप इतिहास, अर्थशास्त्र और राजनीति विज्ञान, ये तीनों विषय पढ़ लीजिए। इसके चलते काफी लोग राजनीति विज्ञान लेते हैं। जो भी बच्चे राजनीति विज्ञान पढ़ते हैं उनके लिए हमने सोचा कि पुनः राजनीति विज्ञान पढ़ाया जाए। बिना इसकी चिन्ता किए कि उसके अन्दर उप-अनुशासन हैं और जिनके अपने-अपने मठ हैं। अन्तर्राष्ट्रीय संबंध वालों का अपना मठ है। सिद्धांत वालों का अपना मठ है। इन मठों की चिन्ता किए बिना हमने सोचा कि हमें बच्चों को राजनीति सिखानी है और उसे राजनीति कैसे सिखाई जाए, इसके लिए अलग-अलग पाठ्यक्रम तैयार किए। जिसमें 11वीं में आकर उन्होंने पहली बार भारतीय संविधान पढ़ा कि संविधान क्या है और व्यवहार में संविधान कैसे काम करता है ? यह बताया कि हमारे अपने जीवन में संविधान का क्या महत्त्व है ? उन्हें कुछ मिसाल और अवधारणाओं की मदद से राजनैतिक सिद्धान्तों के बारे में बताया गया है। हमने दो बदलाव किए। एक, बच्चों को समकालीन विश्व के बारे में बताया जाए। क्योंकि अब तक ऐसा कायदा था कि राजनीति विज्ञान और इतिहास की किताबें उनको बताती थीं कि शीतयुद्ध क्या है ? आखिरी अध्याय में कुछ इशारा कर दिया जाता कि पिछले 15 साल में हालत कुछ बदले हैं।

हमने 1979 से पहले की दुनिया की घटनाओं को एक अध्याय में समेट दिया और 1979 के बाद की दुनिया पर एक पूरी किताब बनाई है कि आज हम जिस दुनिया में जी रहे हैं और जिसमें सोवियत संघ नहीं है, वह दुनिया कैसी है। दूसरा बदलाव यह किया कि हमने पिछले साठ सालों की भारतीय राजनीति का इतिहास बताते हुए एक किताब लिखी। क्योंकि हम सबका यह अनुभव था और इस कमरे में जो बैठे हैं उनका भी यह अनुभव रहा होगा कि आपातकाल आदि जैसी घटनाएं हमारे जीवन में बहुत बड़ी घटनाएं और बहुत बड़े बदलाव थे। आज हमारे स्कूल के औसत बच्चे को 20 और 30 के दशक के बारे में ज्यादा जानकारी है बजाए 60 और 70 के दशक के। और फिर उससे हम आशा करते हैं कि वह विश्वविद्यालय में आकर अचानक 2007 की राजनीति के बारे में पढ़ना शुरू कर देगा। अतः हमने तय किया कि सीधे 2007 पढ़ाने से पहले 1947 से 2007 के बीच का इतिहास बताते हुए पढ़ाया जाएगा। पहली बार हमने स्वतंत्र भारत की राजनीति का इतिहास पढ़ाने की कोशिश की है जिसमें ऐसा कोई मुद्दा नहीं है जिसको नहीं छुआ गया है। जिनके बारे में माना जाता था कि इनको छुआ नहीं जा सकता। उन सब मुद्दों पर एक साधारण सपाट किताब लिखी गई जो बताती है कि पिछले 60 साल में क्या हुआ और जो राजनैतिक पार्टियों का नाम लेती है। आपातकाल के ऊपर पूरा एक बड़ा अध्याय लिखा गया। इनमें 1984 के दंगों का जिक्र है, 2002 के दंगों का जिक्र है। जो बताती है कि क्या कुछ हुआ ! यह सब पिछले 60 सालों के बारे में है। पहले यह सब परिवर्तन पाठ्यक्रम में हुए और उसके बाद पाठ्यपुस्तकों में बदलाव किए। पाठ्यपुस्तक के बदलाव कुछ ऐसे हैं जिनके बारे में सिर्फ बात नहीं की जा सकती, जिन्हें किताब में देखा जा सकता है। अभी किताबें आई हैं और स्कूल के बच्चे पढ़ रहे होंगे। उन्हें आप देखें तो यह बदलाव नजर आएंगे। राजनीति शास्त्र में पहली बार हुआ कि काफी लोगों को जोड़कर बदलाव करने की कोशिश की गई। इतिहास में ये पहले भी हुआ था। इस देश के इतिहासकारों ने पिछले 30 सालों में यह समझा कि स्कूल की शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण चीज है और स्कूल के लिए किताबें लिखना कोई हल्का काम नहीं है।

दूसरी चुनौती, स्वरूप और विषयवस्तु, दोनों को एक साथ बदलने की थी क्योंकि इससे पहले राजनीति विज्ञान की किताबें बहुत ही नीरस थीं। हमने बहुत से बच्चों और अध्यापकों से बात की। एक बात जो हमने बच्चों से बार-बार सुनी कि यह नागरिक शास्त्र बहुत उबाऊ है। यह बहुत रोचक जुमला है कि नागरिक शास्त्र बहुत उबाऊ है। यह ऐसा देश है जिसमें राजनीति का जुनून है। इस देश में आप किसी ढाबे में चले जाइए, जरूर कोई व्यक्ति इस बात पर शर्त लगाने को तैयार होगा कि भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) सरकार को गिराएगी या नहीं गिराएगी और चुनाव अक्टूबर में होंगे या नवम्बर में। आपको पान की हर दुकान और हर ढाबे पर राजनीति की चर्चा सुनाई पड़ जाएगी। राजनीति पर चर्चा करना इस देश में फैशन है। और इतना कि मैं हैरान होता हूं -क्या वास्तव में राजनीति इतनी महत्त्वपूर्ण चीज है ! उसी देश में स्कूल के बच्चे कहते हैं कि नागरिक शास्त्र उबाऊ है ! बच्चों की इसमें कोई रुचि नहीं है। यह कैसे संभव है कि उसी बच्चे के मां-बाप को जिस चीज का जुनून है, वही चीज बच्चे को उबाऊ लगती है ? यह लगभग वैसा ही है जैसे आप इस देश में सिनेमा को पढ़ाना शुरू कर दें। इस देश में जब भी सिनेमा पढ़ाया जाएगा या सिनेमा पर पाठ्यपुस्तक होगी मैं आपको विश्वास दिला सकता हूं कि उसके अन्दर पहले दो अध्याय उसकी तकनीक के बारे में होंगे। फिर सिनेमा का इतिहास बताया जाएगा। सिनेमा के बारे में वे सभी चीजें बताई जाएंगी जो कि बच्चे ने जीवन में कभी नहीं सुनी होंगी। चौथा अध्याय आते-आते बच्चा तौबा कर लेगा और फिल्म देखने से एकदम कान पकड़ लेगा। मसलन इस देश में कम्प्यूटर की शिक्षा दी जाती है। कम्प्यूटर की शिक्षा कैसे दी जाती है ? मैं अपने विश्वविद्यालय

का किस्सा बता रहा हूं जिसका मैं खुद भुक्तभोगी हूं। हमारे विश्वविद्यालय ने फैसला किया कि कम्प्यूटर का जमाना आ रहा है, बच्चों को कम्प्यूटर सिखाना है। कम्प्यूटर के नाम पर जो सिखाया वह यह कि बताइए विन्डोज का अर्थ क्या होता है ? इसका दो पैराग्राफ में हमें उत्तर देना था।

विन्डोज क्या होता है ? डीओएसएस क्या होता है ? हम कम्प्यूटर का ज्ञान प्राप्त कर रहे थे ! मुझे आज भी याद नहीं कि यह क्या होता है। कम्प्यूटर को हाथ लगाना हमें नहीं आता था। की-बोर्ड पर उंगली चलाना हमें नहीं आता था और हम कम्प्यूटर की परीक्षा दे रहे थे। कभी-कभी मुझे इस देश के क्रिकेट प्रेम पर बहुत कोफ्त होती है तो मैं सोचता हूं कि स्कूलों में क्रिकेट पर एक पाठ्यपुस्तक लगा दी जाए। जिस दिन इस देश में क्रिकेट पर पाठ्यपुस्तक बन गई उस दिन इस देश में लोग मैच देखना बंद कर देंगे। जिस दिन बच्चे को तेंदुलकर का जन्म दिन याद करना पड़ेगा, क्रिकेट इस देश में कब आई और पहला टैस्ट मैच कब हुआ; जब यह सब याद करना पड़ेगा तो इस देश के क्रिकेट प्रेम का बुखार एकदम उतर जाएगा। कुछ वैसा ही यहां की राजनीति विज्ञान की पाठ्यपुस्तक के साथ था और अभी भी कई मायने में है। जिस देश में राजनीति से लोग पगलाए हुए हैं, उस देश में बच्चा राजनीति विज्ञान की किताब को देखकर कहता था कि उबाऊ है। उबाऊ शब्द में सब कुछ था। उबाऊ में केवल रुचि का अभाव ही नहीं था, बहुत सी चीजें शामिल थीं। हमने एक तरह से कमर कस ली कि राजनीति विज्ञान की किताबें उबाऊ नहीं होंगी और चाहे कुछ भी हो।

हमने रंगों का खूब प्रयोग किया। एक चीज जो मुझे काफी देर से समझ में आई कि एक सामान्य परिवार में, सामान्य शहरी निम्न वर्गीय परिवार में और एक सामान्य ग्रामीण परिवार में बच्चे के पास घर में स्कूल की किताब को छोड़कर और कोई किताब होती ही नहीं है। ऐसा नहीं है कि घर में सैकड़ों किताबें हैं जिनमें से पाठ्यपुस्तक एक है। घर में यह एक मात्र किताब होती है और उस एक मात्र किताब में रंग की कमी क्यों ? हमने कोशिश की है कि इन किताबों को खूबसूरती से डिजाइन किया जाए। कोशिश की है कि इनमें कहानियां हों, खूब फोटो हों और दुनिया भर से कार्टून शामिल किए जाएं। कार्टून के दो फायदे हैं। एक तो यह कि कार्टून देखकर हंसी आती है। कक्षा में हंस लेना एक राजनैतिक कदम है। क्योंकि आप हंसेंगे तो इसका मतलब है कि आप डरे हुए नहीं हैं। जैसे इस सेमीनार हॉल में हंस लेना, बच्चे का रो लेना, ये सब एक बहुत बड़ी राजनीतिक घटना है। क्योंकि यह एक सत्ता के स्थापित संतुलन को हिलाती है। कक्षा में बच्चे हंस लें, यह एक बहुत बड़ा कदम हो जाएगा। दूसरा, कई ऐसी चीजें होती हैं जिन्हें हम अपने शब्दों में नहीं कह सकते। पाठ्यपुस्तक अपने शब्दों में नहीं कह सकती, उसे एक कार्टून कह देता है। कोई हमारे पीछे जूता लेकर चलेगा तो हम कह देंगे कार्टून था मैं क्या करूं ! इसी नजरिए से तमाम कार्टून्स किताब के अन्दर डाले गए कि बच्चों के लिए किताबें थोड़ी-सी सहज-सरल हो सकें। फिल्मों के संवाद खूब डाले गए हैं।

आप सबको दीवार का वह संवाद याद होगा जिसमें अमिताभ बच्चन कहता है कि नीचे फेंका हुआ पैसा नहीं उठाऊंगा। अस्मिता की इससे अच्छी मिसाल क्या हो सकती है। वह बच्चा इज्जत की मांग कर रहा है। जिसे आज इस देश का प्रत्येक दलित मांग रहा है। अस्मिता के विचार को आप दीवार फिल्म के संवाद के माध्यम से बताइए न। विभाजन के बारे में बताने के लिए आप उन्हें आधा गांव दिखाइए। हमने तय किया कि इस तरह की समस्याओं पर बात करने के लिए तमाम किस्से बताए जाएं, कहानियां बताई जाएं। मैं आज भी मानता हूं कि यदि आपको 60-70 के दशक की उत्तर भारत की राजनीति समझनी है तो पाठ्यपुस्तकों के बजाए राग दरबारी नामक उपन्यास बेहतर है। इस समय की राजनीति को समझने में राजनीति विज्ञान की पुस्तकें उतनी मदद नहीं कर सकेंगी जितना राग दरबारी कर सकता है। यदि आप रेणु को पढ़ें तो सब-ऑल्टर्न स्टडीज उतना नहीं बता पाएंगी जितना कि रेणु का साहित्य बता देगा। हमने ये सब चीजें किताबों में डालने की कोशिश की है।

कक्षा 7 की किताब में एक प्रयोग किया गया है। हमने एक कहानी ली है और वह कहानी बताती है कि एक दिन मम्मी ने हड़ताल कर दी। एक घर है जहां मां कहती है कि आज मैं हड़ताल करूंगी। बस ! आज मैं काम नहीं करूंगी। इसके बाद उस घर में क्या होता है ? वह एक साधारण मध्यम वर्गीय सिख परिवार है और यह भी एक महत्त्वपूर्ण बात है कि वह एक सिख परिवार है। सिख केवल भंगड़ा नहीं करते बल्कि एक सामाजिक जीवन भी जीते हैं जो हमारी कल्पना शक्ति से बाहर की बात है। एक साधारण परिवार में मम्मी कहती है कि आज मैं हड़ताल करूंगी और फिर उस घर में शाम तक क्या होता है, यह उसकी कहानी है। आखिर में बेटी कहती है कि मैं तो कहती थी कि मेरी मम्मी काम नहीं करती, मेरे पापा ही काम करते हैं। शाम तक उस बच्ची को पता लग जाता है कि मम्मी क्या काम करती है। ये सब मामले राजनीति से जुड़े हैं। इन चीजों को, जैसा मैंने कहा, बयान नहीं कर सकते।

कक्षा 9-10 की किताब जाति और राजनीति के बारे में चर्चा करती है जैसा कि 30 साल पहले रजनी कोठारी ने लिखा था। जाति क्या है ? जिसके बारे में हम चर्चा करने से घबराते हैं। जाति और राजनीति का क्या रिश्ता है ? ये किताबें इन चीजों पर बात करती

हैं। कक्षा 12 की किताब कश्मीर पर बात करती है, आपातकाल पर बात करती है, नगालैण्ड पर बात करती है। हम मानते हैं कि खुले रूप में राजनीति पर बात करना मात्र आपको पक्षपातपूर्ण नहीं बना देगा। राजनीति के बारे में बात करते हुए एक संतुलन बनाया जा सकता है। किताब ऐसी होनी चाहिए कि उसे पढ़कर किसी को ऐसा नहीं लगे कि जब किताब लिखी गई थी तो उस समय किस पार्टी का राज था। यह एक न्यूनतम मानदण्ड होना चाहिए। हमने अपने लिए यह एक कसौटी बनाई। इस सबके पीछे एक तत्व है-लोकतंत्र का एक नया दर्शन, लोकतंत्र का एक नया सिद्धान्त। आमतौर पर सिद्धान्त कहीं और बनते हैं और लागू कहीं और किए जाते हैं। हमारा आदर्शवाद बड़ा अधूरा है और हम इसे ढोए जा रहे थे। एक बड़ा बदलाव आ रहा है और जो आना चाहिए कि, क्या हम इस देश के लोकतंत्र को इस तरह से पढ़ने की कोशिश कर सकते हैं जिसमें इस देश के लोकतंत्र को केन्द्र में रखा जा सके। इसकी खूबी और इसकी खराबी, दोनों को, हम इसके अपने पैमाने पर जांचकर देखें। लेकिन हम मानते हैं कि यदि हम थोड़ा-सा अमेरिका जैसा दिखना शुरू करेंगे तो हम अच्छे हैं। अमेरिका जैसे कम दिखने शुरू हों तो हम खराब हैं। यह एक पैमाना है जिसको राजनीति विज्ञान अभी तक नहीं छोड़ पाया है। इसका हाल कुछ वैसा ही है जैसे गर्मी के मौसम में बाबूजी ने टाई बांधी हुई है। पता चला कि साहब सामने से नेकर पहन कर चले आ रहे हैं। ऐसा अक्सर होता है। गर्मी के मौसम में हम टाई लगाकर चलते रहते हैं और ऊपर से कोट भी पहन लेते हैं। हमने कोशिश की कि वह सब उतार कर रख दें और इस देश का जैसा मिजाज है, इस देश की जैसी आवो-हवा है उस हिसाब से देखें कि क्या कुछ चल रहा है। यह सब एक दर्शन है।

अब मैं अपना व्याख्यान खत्म करते हुए चुनौतियों की बात करना चाहता हूं क्योंकि जो कुछ हुआ है उसके बारे में लम्बी बात करने का कोई तुक नहीं है। अगर यह सब करने के बाद आपको मेरे कहने में कहीं नैराश्य दिख रहा हो तो वह बहुत सही है। किताब लिखने के बाद हमने जाना कि इस देश में, कितनी बड़ी चुनौतियां हैं। पाठ्यपुस्तक और पाठ्यचर्या तो इस देश में शिक्षा की चुनौती का एक बहुत छोटा-सा हिस्सा है। आप कोई किताब लिख दीजिए लेकिन कक्षा में क्या पढ़ाया जाएगा उसका किताब और पाठ्यचर्या से कोई विशेष संबंध नहीं है। मेरे गांव के मास्टर जी, जिन्हें मैंने बहुत खुशी और बड़े उत्साह से जाकर बताया कि अब नई पुस्तकें आ गई हैं। एनसीईआरटी जो भी करती है हरियाणा बोर्ड उसको लागू कर देता है। उनके लिए कुछ करने का झंझट ही खत्म हो जाता है, समितियां नहीं बनानी पड़ती, उनकी समस्याएं खत्म हो जाती हैं। हमारे गांव में एनसीईआरटी की किताबें लागू होती हैं। अतः मैं बड़ा खुशी-खुशी अपने गांव गया। मास्टर जी से पूछा, ''मास्टरजी वो नई वालीं किताबें आ गईं।'' 15-20 मिनट के संघर्ष के बाद मुझे समझ में आया कि मास्टर जी पाठ्यपुस्तक और कुंजी में अन्तर नहीं कर पा रहे हैं। यह तो तब पता चलेगा जब आप कुंजी और पाठ्यपुस्तक में अंतर जानते हों। मास्टर जी कह रहे थे कि, ''हां, इस साल वाली नई किताब आई हैं, परसों एजेन्ट आकर दे गया है।'' मैं कह रहा था, ''उसमें कुछ कार्टून हैं, उसमें कुछ रंग हैं।'' उन्होंने कहा, ''नहीं, रंग-वंग तो नहीं हैं लेकिन पिछले हफ्ते नई आई तो हैं।'' मैंने कहा, ''आप दिखाएंगे मुझे वो किताब।'' उन्होंने कहा, ''हां।'' अन्ततः उन्होंने मुझे एक एमबीडी की कुंजी दिखाई। मास्टर जी के मन में वह पुस्तक थी। हम लोग किस दुनिया में जीते हैं ! ऐसी स्थिति में ऐसी किताबें लिखने से इस देश के गांव में जो राजनीति की समझ है क्या उस पर रत्तीभर भी असर पड़ेगा ! अगर ऐसा कोई गुमान या गलतफहमी थी तो उन्होंने उसे अच्छी तरह से झाड़-पोंछ कर साफ कर दिया।

यह सब देखने के बाद अच्छा अनुभव यह है कि यदाकदा किसी बच्चे की चिट्ठी आ जाती है। बच्चों को हमने अपना पता दिया है, गाहे-बगाहे किसी बच्चे की चिट्ठी आ जाती है तो उससे कभी-कभी उत्साह बढ़ जाता है। क्योंकि ये किताबें बच्चों को बहुत अच्छी लगी हैं। बच्चे कहते हैं कि मुझे मजा आ रहा है और ये बच्चे काफी अच्छी चीजें कहते हैं। लेकिन अध्यापकों का ऐसा मानना नहीं है। जिन-जिन सामान्य अध्यापकों से मैं मिला हूं, दो-चार को छोड़ दीजिए, उन्हें लगता है कि उनकी परेशानी बढ़ गई है। वे कहते हैं कि, ''सर, पता नहीं आपने इन किताबों में देशों के क्या-क्या नाम दिए हैं। चिली और ये घाना ! कहां हैं ये देश ? इन किताबों में क्या-क्या बात कर रहे हैं आप। और राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री वगैरह तो सब ठीक थे न।'' एक साधारण अध्यापक की मानसिकता भी खुद राजनीति शास्त्र नामक विषय से बनी हुई है। मुझे नहीं लगता कि इन किताबों को लेकर अध्यापक बहुत खुश और उत्साहित हैं। और क्या देश उत्साहित है ? इन किताबों के बारे में मीडिया में काफी कुछ लिखा गया है। पिछले दो सालों में हमने कुल छः किताबें लिखी हैं। कम से कम तीस-चालीस बार इन किताबों पर लिखा गया है। मैं इकतालीस वीं रिपोर्ट के बारे में बात करना चाहता हूं। चालीस बार जो रिपोर्ट आईं उसमें एक भी रिपोर्टर ने न तो किताबों को पढ़ा, न किसी अध्यापक से बात की, न किसी विद्यार्थी से बात की, न किसी स्कूल में गया।

पिछले साल मेरे पास बहुत से फोन आए। पत्रकार कह रहे थे कि इस किताब में दंगे पढ़ाए जा रहे हैं। मैंने कहा, ''अभी तो इस किताब के पहले पन्ने का पहला प्रारूप भी नहीं लिखा गया है। आपको कहां से अध्याय मिल गए ! आपकी किताब के बारे में राय

है, बहुत अच्छी बात है। किताब अभी लिखी जा रही है। आप थोड़े समय किताब के आने का इंतजार कर लीजिए। अभी तो केवल पाठ्यक्रम बनाया गया है।'' बिना किताब के आए ही इसके ऊपर पूरे देश में बहस चल रही है। जब किताब लिखी गई तो हमने इसे तीस-चालीस लोगों के पास भेजा कि कृपया आप यह किताब पढ़ें। उनमें से शायद किसी ने भी कुछ नहीं लिखा। इसके बाद जिसका भी फोन आया तो मैंने कहा, ''क्या आपने इस किताब को पढ़ा है ?'' ''सर, इसके अंदर वो फलां कार्टून है।'' मैंने कहा, ''कार्टून तो है लेकिन क्या आपने इस पुस्तक के पहले दो और अगले चार पेज पढ़ लिए हैं कि वो कार्टून किस संदर्भ में है।'' बोले, ''सर मैं जरूर पढ़ लूंगा पर पहले आप एक बाइट दे दीजिए।'' ये हमारा मीडिया था।

इन पुस्तकों पर न्यूयॉक टाइम्स के पत्रकार ने गंभीर तरीके से लिखने की कोशिश की। न्यूयार्क टाइम्स ने इस किताब पर एक रिपोर्ट लिखी है, उसने कहा कि हम आजादी के साठ साल की रिपोर्ट पन्द्रह अगस्त वगैरह के बारे में नहीं करेंगे। उसने पुस्तक ली और कहा कि भारत एक परिपक्व लोकतंत्र हो गया है, इसका एक प्रमाण आपको देखना है तो आप इस किताब को पढ़ लीजिए। मुख्य पेज पर यह न्यूयार्क टाइम्स की रिपोर्ट थी। न्यूयार्क टाइम्स की एक रिपोर्टर एक स्कूल में गईं। उन्होंने स्कूल के बच्चों से बात की। जब इस पुस्तक का अध्याय पढ़ाया जा रहा था उस वक्त वह वहां बैठी और उसने सुना। उसने लिखा कि शिक्षक का क्या मानना था और बच्चों का क्या मानना था। जो भी अच्छा-बुरा मानना था उसने वह लिखा। उसने उस किताब को पढ़ा। मुझे खुशी भी हुई और बेहद शर्म भी आई कि इस देश का एक भी अखबार यह काम नहीं कर सकता। वह महिला हिन्दी नहीं जानती थी। वह पहली महिला थी, जिसने इस किताब के बारे में लिखा। यह घटना एक बड़ी चुनौती की तरफ सिर्फ इशारा करती है।

एक चुनौती अध्यापक की मनःस्थिति को बदलने और उसकी क्षमताएं बढ़ाने की है। गांव के अध्यापक को हम कह रहे हैं कि चिली और घाना के बारे में बताइए। उसके पास एटलस नहीं है। उसको कैसे बताएं कि वह बच्चों को कैसे समझाए। उसको बेहतर संसाधन उपलब्ध कराने और परीक्षा प्रणाली को बदलने की भी बड़ी चुनौतियां हैं। पिछले ही सप्ताह अंग्रेजी के 50 अभिजात स्कूलों की 50 अध्यापिकाओं से मेरी बातचीत हुई। सब अध्यापिकाएं बहुत नफीस अंग्रेजी में बात कर रही थीं। सबने कहा कि ये बहुत ही अच्छे तरीके से लिखी गई पाठ्यपुस्तकें हैं। और उनके 'किन्तु-परन्तु' के बाद शुरू होता था कि 4 नम्बर का सवाल कहां से आएगा, 2 नम्बर का सवाल कहां से आएगा और इसका विभाजन कैसे होगा ? फलां चीज परीक्षा में पूछी जा सकती है या नहीं। हमारे यहां पाठ्यपुस्तकें केवल इम्तिहान पास करने के लिए बनती हैं। जब तक हम परीक्षा प्रणाली में कोई बदलाव नहीं करेंगे तब तक इन चीजों का कोई मतलब नहीं है।

हमने इन सभी 6 किताबों में एक प्रयोग किया है। कक्षा में प्रश्न पूछना बहुत बड़ा गुनाह है, प्रश्न पूछने पर बहुत दिक्कत होती है। बहुत से बच्चे जिनके मन में सवाल आते हैं और जिन्हें लगता है कि शायद मेरा सवाल सही है। लेकिन जैसे ही वे अपने शिक्षक से सवाल पूछते हैं तो शिक्षक कहते हैं कि क्या बेवकूफी का सवाल है ! चुप हो जा ! इसके लिए हमने उन तमाम बेवकूफी भरे सवालों को किताब में लिख दिया है। किताब में दो चरित्रों को हमने प्रस्तुत किया है। एक का नाम है उन्नी, दूसरे का नाम है मुन्नी। उन्नी और मुन्नी हर दूसरे पेज पर आते हैं और कभी कोई मूर्खतापूर्ण तो कभी कोई शरारत भरा, कभी कोई ऊटपटांग, कोई ऊल-जलूल सवाल पूछते हैं। ये दोनों पूरी किताब में बीच-बीच में सवाल पूछते ही रहते हैं और वे यह भी कहते हैं कि किताब लिखने वालों को क्या बिल्कुल ही अक्ल नहीं है, क्या बात कह रहे हैं ? हमने यह सब कोशिश की है ताकि बच्चे को महसूस हो कि जो सवाल मेरे मन में था दरअसल इतना मूर्खतापूर्ण नहीं था। चाहे गुरुजी ने मना कर दिया लेकिन सवाल किताब लिखने वाले ने खुद लिखा है।

इस सबके बाद एक बुनियादी सवाल, जिससे मैंने आज शुरू किया था, अभी भी मेरे सामने मुंह बाये खड़ा है कि क्या औपचारिक स्कूली शिक्षा लोकतंत्र में मददगार हो सकती है ? औपनिवेशिक भारत में तो मददगार नहीं थी और मददगार होने की कोई नीयत भी नहीं थी। स्वतंत्रता के बाद शायद नीयत थी, लेकिन समझ नहीं थी। आज जब हम कहते हैं कि हमारा लोकतंत्र परिपक्व हो गया है तो क्या आज भी औपचारिक शिक्षा लोकतंत्र में बाधा बनी रहेगी ? लोकतांत्रिक मानस, लोकतांत्रिक दृष्टि बनाने में बाधा बना रहेगा ?

मैं यहां मजदूर किसान शक्ति संगठन (एमकेएसएस) के कार्यक्रम में आया था। एमकेएसएस ने कल जयपुर कलेक्ट्रेट के सामने जन सुनवाई की थी। और मुझे निश्चित लगता है कि कोई ग्यारहवीं-बारहवीं का बच्चा उस जनमंच में दो घंटा बैठकर लोकतंत्र को बेहतर जानेगा बजाए इन किताबों को पढ़ने के। यह अपेक्षा करना कि लोकतंत्र की शिक्षा औपचारिक स्कूलों में दी जाएगी, शायद इसकी कोई जरूरत नहीं है। इसी प्रश्नचिन्ह के साथ मैं अपनी बात खत्म करता हूं। ◆